विश्व हिंदी पत्रिका
2020

प्रवासी लेखन का असमंजस और सुषम बेदी का साहित्य

– रेखा सेठी
दिल्ली, भारत

20 मार्च, 2020 को सुषम बेदी हमारे बीच से चली गईं। थोड़े दिनों की बीमारी के बाद न्यूयॉर्क में उनका देहावसान हो गया। सुषम बेदी का जाना हिंदी साहित्य में एक अंतराल छोड़ गया है। किन्हीं अर्थों में उनका साहित्य, एक लंबे समय से प्रवासी लेखन की नुमाइंदगी करता रहा है। उनकी अधिकांश प्रकाशित कृतियाँ उनके विदेश प्रवास के बाद ही लिखी गईं, लेकिन अपने लिए प्रवासी लेखन की अलग नाम–पट्टी उन्हें कतई स्वीकार नहीं रही। वे बड़ी अदा से कहतीं *"तो क्या मैं भारतीय नहीं हूँ?"* प्रवासी लेखक होने का अर्थ यदि भारत से इतर होने की पहचान से बनता है, तो उनका मानना था कि उस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए। उन्होंने हमेशा कोशिश की कि इस तरह की पहचान से अलग यदि हिंदी साहित्य की कोई मुख्य धारा है, तो वे उसी में रहना चाहेंगी।

अपनी लेखन यात्रा के दौरान उनके सम्मुख बहुत बार ऐसे अवसर आए, जब प्रवासी लेखन से संबंधित असमंजस भरे सवालों को उन्होंने बहुत तीव्रता से महसूस किया। श्री अनिल जोशी की पुस्तक 'प्रवासी लेखन : नई ज़मीन, नया आसमान' की भूमिका में सुषम जी ने ऐसी ही एक घटना का वर्णन किया है। एक गोष्ठी में ऐसा प्रसंग आने पर सुषम जी ने जो उत्तर दिया– *"तब किसी ने यह सवाल उठाया कि चूँकि प्रवासी अहिंदी भाषी विदेशों में बैठकर हिंदी में लिख रहे हैं, तो उनके साथ रियायत की जाए, जिसका मैंने डटकर विरोध किया कि अगर प्रवासी साहित्य अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता, तो मरने दीजिए उसे। और देखिए खड़ा हो ही गया। बाकायदा स्वस्थ युवक या युवती, किसी का सहारा नहीं चाहिए उसे। अपने बूते जिएगा, फलेगा, फूलेगा। देखा जाए तो कभी–कभी यह भी लगता है कि जिस तरह अमेरिका और इंग्लैंड–रिटर्न्ड भारतीयों को भारत में यूँ ही महत्त्व मिल जाता है, वैसा ही कहीं इस साहित्य के साथ भी न हो रहा हो। पश्चिम की दौलत की चमक आँखें चुँधिया तो देती ही हैं। खैर असलियत तो वक्त ही बताता है – क्या रहेगा, क्या बेमौत मारा जाएगा!"* इस विषय पर उनके विचारों में पैनी आक्रामकता दिखती है। वे पूरी स्पष्टता और प्रखरता से अपनी बात कहती हैं।

इन बातों में जहाँ प्रवासी साहित्य की स्वीकृति के लिए आरंभिक संघर्ष दिखता है, वहीं सुषम जी के मन की खिन्नता भी सामने आती है। हालाँकि बाद के वर्षों में उन्होंने प्रवासी लेखन की अपनी विशिष्टताओं पर गंभीरता से विचार किया और उसे दोहरी संवेदनाओं की मिलन भूमि के रूप में देखा। लेकिन जो भी हो ऐसी घटनाओं से उनके मन में कहीं न कहीं यह धारणा अवश्य बनी रही कि *"हिंदी के लेखक कहलाने लायक लोग वही हैं, जो भारत में छपने वाली मुख्य साहित्यिक पत्रिकाओं में छपते हैं। वही असली कसौटी है और जो यहाँ नहीं छपते, वे कितने भी बड़े लेखक क्यों न हों, उनकी पहचान नहीं बन पाती।"* उन्होंने तय किया कि उनकी कहानियाँ 'हंस', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जैसी मुख्य पत्रिकाओं में छपती रहें और यही पत्रिकाएँ वे खुद भी पढ़ती रहीं। अमेरिका से लिखने वाले बहुत कम लोग ही थे, जो इन पत्रिकाओं में छपते थे। हिंदी कथा–लेखन में उषा प्रियंवदा का नाम ज़रूर आता था, लेकिन उनके अतिरिक्त ज़्यादा लेखक नहीं थे।

सुषम जी का जाना उनके भौतिक जीवन का अवसान अवश्य है, लेकिन एक रचनाकार का उत्तर जीवन उसकी रचनाओं के माध्यम से रूप धरता है। प्रायः अधिकांश रचनाकारों के जीवन–काल के बाद ही उनकी रचनाओं का गंभीर मूल्यांकन होता है और ऐसे सभी प्रयासों में, वे सदा हमारे बीच रहेंगी। चार दशक से अधिक के लंबे रचनात्मक जीवन में उन्होंने अनेक कहानियाँ, उपन्यास तथा कविताओं की रचना की,

लेकिन उनकी ख्याति का मुख्य आधार उनकी कथात्मक रचनाएँ ही हैं। उनके उपन्यास हैं – 'हवन' (1989), 'लौटना' (1992), 'कतरा–दर–कतरा' (लघु–उपन्यास 1994), 'इतर' (1998), 'गाथा अमरबेल की' (1999), 'नवाभूम की रस कथा' (2002), 'मोर्चे' (2009), 'मैंने नाता तोड़ा' (2009), 'पानी केरा बुदबुदा' (2017)। उनकी कहानियों के चार संकलन प्रकाशित हुए – 'चिड़िया और चील' (1995), 'यादगारी कहानियाँ' (2019), 'तीसरी आँख' (2015), 'सड़क की लय' (2017)। उनके कविता–संग्रह हैं – 'शब्दों की खिड़कियाँ' (2006) तथा 'इतिहास से बातचीत' (संभावित प्रकाशन वर्ष 2006 से 2008। अभिव्यक्ति पोर्टल से इस पुस्तक की सूचना मिली है)। आलोचना की पुस्तक है – 'हिंदी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में' (1984) तथा निबंध–संग्रह है – 'हिंदी भाषा का भूमंडलीकरण' (2012) तथा 'आरोह–अवरोह' (2017)।

अपने लिखने को लेकर वे बड़े मज़ेदार ढंग से बताती थीं कि कैसे कहानियाँ स्वयं उनके भीतर कुलबुलाने लगती हैं। उन्होंने स्कूल–कॉलिज के दिनों से ही लिखना शुरू कर दिया था। *"कॉलिज में किसी गंभीर विषय पर आलोचना लिखने को कहा जाता, तो मेरे अन्दर बड़े ज़ोर से कहानी आने लगती और जब तक मैं रात भर जागकर वह कहानी लिख नहीं लेती, मुझसे कोई और काम नहीं होता।"* तो कथा–कहानियाँ उनके भीतर यूँ ही जन्म ले लेतीं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के सबसे पुराने महिला कॉलिज इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय की छात्रा रहीं, जहाँ उनकी प्राध्यापिकाओं में हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री इंदु जैन भी थीं। उनसे उन्हें कविताएँ लिखने की प्रेरणा तो मिली ही और उससे बढ़कर सतत लिखते रहने, अपने लिखे को सँवारते रहने की प्रेरणा भी मिली। उनकी कविताएँ नाज़ुक मन की अभिव्यक्तियाँ हैं। 'शब्दों की खिड़कियाँ' काव्य संकलन की एक छोटी–सी कविता 'परिभाषाएँ' उनके काव्य स्वभाव को अभिव्यक्त करती है। कम से कम शब्दों में, तरलता से बहती शब्द–सरिता, जो भावात्मकता की गहराई के साथ–साथ दर्शन की उदात्त ऊँचाइयों को छूने की सामर्थ्य रखती है

"क्या है प्यार?
शब्दों का जोड़–तोड़
छन्दमय उद्‌गार
या सागर को आह्वान देती
बधिर बेथोवन की नवीं सिम्फनी!
पीड़ा क्या है?
ओस की तरल बूँदें
ज्वालामुखी की दबी–घुटी साँसें
रात का घुल जाना
या पहाड़ का भरभराकर मिट्टी हो जाना!
गीत क्या है?
अंतड़ियों की चीख़
रेंगती हुई चींटियों का अद्‌भुत संयोजन
कँपकँपाती उंगलियों के थरथराते स्पर्श
या लय का सुरापान!"

कविताओं की ही तरह उनका कथा साहित्य भी कवि मन की सूक्ष्म संवेदनशीलता से सिरजा जाता है। उनका पहला उपन्यास था – 'हवन' (1989)। इसमें अमेरिकी परिवेश में भारतीय मन और संस्कार की टकराहट को अत्यंत तीव्रता के साथ उपस्थित किया गया। उस समय इस विषय पर कोई उपन्यास नहीं लिखा गया था। कुछेक कहानियाँ अवश्य आई थीं। सुषम जी ने इस उपन्यास के साथ पहली बार हिंदी साहित्य में इस जीवन स्थिति को उपन्यास के विस्तृत कैनवस पर बुना। संभवतः सभी प्रवासी लेखकों को अस्मिता का द्वंद्व बहुत तीव्रता से कचोटता रहा है। इसीलिए दो परिवेशों के बीच त्रिशंकु की–सी स्थिति, उनके लेखन का केन्द्रीय थीम बनती है। सुषम बेदी के उपन्यासों और कहानियों में भी यह थीम बार–बार, नए सिरे से रूप बदल–बदलकर आती है। फिर भी अपनी ऐसी किसी भी पहचान से उन्हें परहेज़ रहा, जिसमें उन्हें भारतीय लेखक के अतिरिक्त किसी और रूप में देखा जा सकता है।

'हवन' उपन्यास में सुषम जी ने बहुत बारीकी से उस भारतीय परिवार की मनःस्थिति का विश्लेषण किया है, जो अमेरिकी ऐश्वर्य की लालसा में स्वयं हवन की समिधा बन जाते हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए दो महत्त्वपूर्ण तथ्य रेखांकित किए हैं। पहली बात इसके कथ्य को लेकर है – *"हवन उपन्यास एक प्रकार से भारतीयता*

(इंडियननैस) तथा अमेरिकनवाद के द्वन्द्व का उपन्यास है।" दूसरी बात कथ्य से अधिक, सुषम जी की कथा–संरचना की पद्धति पर है। वे लिखते हैं – *"हवन को पढ़ते समय कई बार ऐसी अनुभूति हुई, मानो मैं भी उसका एक पात्र हूँ और मैं भी कुछ बोलना चाहता हूँ, पात्र के पक्ष–विपक्ष में खड़ा होना चाहता हूँ तथा जीवन–संघर्ष में जुटे पात्रों को प्रोत्साहित करना चाहता हूँ। इसका अर्थ है कि 'हवन' उपन्यास मेरे जैसे पाठक की एक जीवंत दुनिया का वास्तविक चित्र देता है और यह वास्तविकता इतनी सत्य है कि 'हवन' एक काल्पनिक उपन्यास न रहकर जीवन का एक यथार्थ बिम्ब बनकर मन में उतरने लगता है।"* यह टिप्पणी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि साहित्य सृजन की प्रक्रिया में कैसे कोई लेखक पाठक को शामिल कर लेता है, यह इसका साक्ष्य है। कथा–संरचना की यह शैली पाठक को चमत्कृत करने की अपेक्षा अपनी यात्रा का सहचर बनाती है।

'हवन' का अंग्रेज़ी अनुवाद *'The Fire Sacrifice'* शीर्षक से ऑक्सफ़ोर्ड ने प्रकाशित किया। अंग्रेज़ी में भी इस उपन्यास को विशेष मान्यता मिली। इसका प्रकाशन दक्षिण एशियाई साहित्य की एक सीरीज़ के अंतर्गत किया गया। उस सीरीज़ में बाकी उपन्यास रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि के प्रतिष्ठित लेखकों के थे। इन सब के बीच 'हवन' उपन्यास का चयन इसलिए किया गया था कि वह हिंदी साहित्य में एक नई धारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था। अमेरिका में हिंदी डायस्पोरा के प्रतिनिधि के रूप में हिंदी साहित्य में विकसित होने वाली प्रवासी लेखन की नई धारा को रेखांकित करने के लिए इस उपन्यास की विशेष उपस्थिति बनी। लंदन में आयोजित कॉमनवेल्थ साहित्य सम्मेलन में उन्हें ऑक्सफ़ोर्ड की ओर से आमंत्रित किया गया। यू.के. में अनेक भारतीय लेखकों – गिरीश कर्नाड, अनंतमूर्ति, मृणाल पांडे आदि की रचनाओं के अनुवाद हुए थे, इन्हीं सब के बीच सुषम बेदी के उपन्यास 'हवन' के अंग्रेज़ी अनुवाद का लोकार्पण हुआ। यह अनुभव उनके लिए अभिभूत करने वाला क्षण था। इस अवसर से सुषम जी के लिए विश्व साहित्य के दरवाज़े खुल रहे थे, लेकिन उनके मन में अफ़सोस भी था। उन्होंने बहुत भारी मन से मुझसे एक बातचीत में कहा *"भारतीय लेखन की मुख्य धारा में होना ही मेरा अभीप्सित था और अमेरिका तब तक मेरे लिए एक अस्थायी निवास था। अपना इस तरह देखा जाना मुझे भला नहीं लगा। भीतर एक मूक विरोध उठता रहा कि मैं अमेरिकी साहित्यकार भला कैसे हो गई? अमेरिका की भाषा तो हिंदी है ही नहीं, तब भला अमेरिकी लेखक कैसे? वहाँ तो मुझे अंग्रेज़ी के ज़रिए से ही जितना जानते हैं, सब जानते हैं या अमेरिका के हिंदी पढ़ने वाले भी, हिंदी की लेखिका के रूप में। यही मेरी पहचान थी। अब एक अलग पहचान थोपी जा रही थी मुझ पर, जबकि वह मेरी पहचान बन ही कैसे सकती है। अगर अमेरिकी लेखक होना था, तो फिर अंग्रेज़ी में लिखती।"* उनका यह आग्रह अंत तक बना रहा।

किसी भी साहित्यकार के लिए उसका देशकाल भौगोलिक जगत या समय से निश्चित नहीं होता। निश्चित होता है मानवीय संवेदना के ग्राफ़ से, जिसके पैमाने हर व्यक्ति के लिए अपने–अपने होते हैं, लेकिन अपने मूल रूप में वह निज से मुक्त होकर व्यापक मनुष्यता से जुड़े होते हैं। सुषम बेदी की कहानियाँ बार–बार इसी सत्य का एहसास कराती हैं। इन कहानियों के केंद्र में परिस्थितियाँ या जीवन–स्थितियाँ छोटी–छोटी हैं, यानी हमारी रोज़मर्रा के जीवन में आने वाली असंख्य स्थितियाँ, जो अक्सर हमारी नज़र से छूट जाती हैं या जिनको कभी हमने इतना महत्त्व नहीं दिया कि वह साहित्य के माध्यम से मानवीय सभ्यता के संकट को निर्देशित कर सकें। सुषम जी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इन्हीं जीवन स्थितियों को अपने साहित्य में पुनर्जीवित करती हैं और बड़े धैर्य के साथ छोटे–छोटे ब्यौरे, छोटे–छोटे प्रसंग जीवन व्यापी प्रश्नों को हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। जिस बारीकी से वे अपनी कहानियों के आख्यान बुनतीं और पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्वों को उकेरतीं, वह उन्हें कहानी–लेखन की अलग पंक्ति में खड़ा करता है। उनकी अधिकांश कहानियों की थीम उन भारतीयों से संबद्ध थी, जो अमेरिका जाकर बस गए, लेकिन मन से वे हिंदुस्तान से दूर नहीं हो सके और अमेरिका में भी अपने साथ एक हिंदुस्तान ले गए। ये कहानियाँ अपने पूर्ण उत्कर्ष पर तब पहुँचती हैं, जब भारतीय एवं अमेरिकी जीवन–शैली के अंतर एक ऐसी स्थिति पैदा करते हैं, जिनकी टकराहट में मानवीय संवेदना को बिल्कुल अछूते ढंग से छूआ जा सकता है।

'चिड़िया और चील' से लेकर 'सड़क की लय' तक अपनी

कहानियों में उन्होंने प्रवासी जीवन की अलग–अलग समस्याओं को पूरी सहानुभूति और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनका फ़ोकस केवल स्त्री समस्याओं पर नहीं है। वृद्ध जीवन की समस्याएँ और अकेलापन, गोरे–काले का भेद, अमेरिकी जनतंत्र का खुलापन आदि अनेक विषयों को पारखी नज़र से देखा गया है। एक मायने में सुषम बेदी का लेखन प्रवासी साहित्य की ज़मीन और आसमान यानी दृष्टि बोध व लक्ष्य दोनों को एक साथ साकार करता है। 'कितने–कितने अतीत', 'अवसान', 'अवशेष' आदि विशेष रूप से जीवन की ढलान की कहानियाँ हैं। इनमें भी 'उसकी माँ यानी ग्लोबल नियति' तथा 'गुनहगार' विशिष्ट मनःस्थिति की कहानियाँ हैं। 'एक अधूरी कहानी' हो या 'चट्टान के ऊपर, चट्टान के नीचे' अश्वेत लोगों के प्रति हमारी मानसिकता, अप्रिय व्यवहार के साक्षी हैं। सुषम जी की कहानियों की विशिष्टता इस बात में भी है कि वे किसी भी स्थिति–परिस्थिति का वर्णन करते हुए दृष्टि अपनी ओर लौटा लाती हैं, यानी समाज में बतौर लेखक और पाठक सभी की ओर। किसी भी वंचित के प्रति हमारा सामाजिक व्यवहार हमें अपनी ओर देखने की भी दृष्टि देता है। व्यक्ति की सोच बदलने से ही सामाजिक बदलाव संभव होता है। इन कहानियों पर डॉ. शैलजा सक्सेना लिखती हैं *"ये कहानियाँ अपने सच्चे कहन के कारण हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं और देर तक याद रहने वाली हैं।"*

उनके कई उपन्यासों और कहानियों के अंत पर मेरे मन में असमंजस बना रहता। खासतौर पर जहाँ स्त्री की स्थिति का वर्णन है, वहाँ उनकी नायिकाएँ सरल समझौते कैसे कर सकती हैं? जैसे 'लौटना' उपन्यास पढ़ने के बाद मुझे कुछ निराशा हुई। मुझे ताज्जुब हुआ कि जिस सुषम बेदी को मैं जानती हूँ, वह तो बहुत तरक्कीपसंद हैं, जो हमेशा अपने युवा साथियों से कहती रहीं हैं कि 'नए ज़माने में नई तरह से जीना सीखो'। मैंने सुषम जी से इसका रहस्य जानना चाहा, तो उन्होंने कहा कि *"यदि तुम इसे स्त्री–विमर्श के नज़रिए से पढ़ोगी, तो निराशा ही होगी, लेकिन अगर यह सोचकर पढ़ो कि ये सब व्यवस्थाएँ उन स्त्रियों के साथ आईं, जो भारत से अमेरिका आईं और भारत के संस्कार अपने मन में लिए आईं। उनके लिए बिल्कुल नाता तोड़ लेना या जिसे यूँ कहें कि रेडिकल परिवर्तन से जीवन जीना और सोचना इतना आसान नहीं था।"* बाद में जब उन्होंने 'मैंने नाता तोड़ा' उपन्यास लिखा, संभवतः तब तक उन्होंने अपने मन में इस परिवर्तन को आत्मसात कर लिया था कि एक लड़की अपनी अलग पहचान बनाकर विदेश की मिट्टी में सिर उठाकर जीने का फैसला कर सकती है। उनका कहना था कि *"उसे यह दृढ़ता और आत्मविश्वास बहुत हद तक अमेरिकी परिवेश से मिलता है।"*

सुषम जी ने खुद भी अमेरिकी परिवेश से बहुत कुछ सीखा था। वे उन सभी तत्त्वों को ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहतीं, जो उन्हें प्रगतिशील लगते, फिर चाहे वह जिस भी समाज और संस्कृति से आते हों। किसी भी व्यक्ति की निजता का सम्मान अमेरिकी समाज में रहते हुए और दृढ़ हो गया और एक तरह से जीवन–मूल्य बन गया। किन्हीं अर्थों में सुषम बेदी ने अपने लेखन में बड़ी कठिन साधना की है। भारतीयता को बचाए रखते हुए पश्चिम के समाज की तरफ़ देखना और दोनों समाजों के प्रति ऐसी दृष्टि विकसित करना, जिसमें सजग मानवीयता के तत्त्व बचे रहें। भारत हो या पश्चिम की दुनिया, मानवीय–बोध के व्यापक क्षितिज पर दोनों एक–दूसरे के बिल्कुल निकट जान पड़ती हैं। सुषम बेदी के लेखन में देश–काल, परिवेश बदलता रहता है, लेकिन अंतःसूत्र एक ही रहता है, मानवीय संवेदनाओं की खरी पहचान। उनके लेखन का स्वभाव है, अपने पात्रों के मन में गहरे उतर जाना और फिर भी वह दूरी बनाए रखना, जो लेखन के लिए ज़रूरी होती है। संलिप्तता और निर्लिप्तता का अनूठा सामंजस्य।

उनके लेखन में दो संस्कृतियों के बीच का अंतराल, जीवन जीने की शैलियाँ और जीवन को महसूस करने की उनकी अपनी–अपनी फ़ितरत, सहज ही उजागर हो जाते हैं, लेकिन महत्त्व इस बात का है कि दो संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिस्पर्द्धा के भाव से एक–दूसरे के सामने नहीं आतीं। यहाँ सब अपने हैं, पराया कोई नहीं। दोनों का सुख–दुख समान रूप से व्यापता है। प्रायः अपनी जड़ों को न छोड़ पाने के कारण कभी–कभी प्रवासी साहित्य को नॉस्टालजिक कहा जाता है, लेकिन सुषम जी ने निराधार द्वंद्वों को खारिज कर, उसके गुणात्मक पक्ष को रेखांकित किया है – *"पाश्चात्य जगत में हिंदी में लिखने वाले*

प्रवासी लेखक ज़्यादातर पहली पीढ़ी के ही हैं। इसलिए दोहरी चेतना उनमें रहती ही है। इसे नॉस्टालजिक कहकर दुत्कारने की ज़रूरत नहीं है। यह तो यहाँ के जीने का एक तरीका है, जहाँ हम लगातार दो संस्कृतियों, दो तरह की संवेदनाओं और नज़रियों के साथ जीते हैं।" उनका अपना लेखन भी इन दोहरी संवेदनाओं से बल पाता है और स्थायी महत्त्व अर्जित करता है।

संदर्भ :

1. अनिल जोशी, प्रवासी लेखन : नई ज़मीन, नया आसमान, भूमिका
2. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 14
3. वही, पृ. 13
4. परिभाषाएँ, शब्दों की खिड़कियाँ, पृ. 48
5. कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. 452
6. वही, पृ. 451
7. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 14
8. शैलजा सक्सेना, साहित्य कुँज http://sahityakunj.net/blog/jeevan-sthitiyon-ki-gathakar-susham-bedi-vishesh-san-darbh-sadak-ki-lay-aur-anya-kahaniyan
9. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 16
10. वही, पृ. 16
11. प्रवासी साहित्य : दोहरी संवेदनाओं की मिलन भूमि, साक्षात्कार आजकल (पत्रिका) मई 2020, पृ. 22

rsethi@ip.du.ac.in